इकाई 18 मुद्रा की माँग के सिद्धांत : क्लासिकी, केन्ज़ीय तथा आधुनिक स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 अर्थव्यवस्था में मुद्रा की भूमिका
18.3 मुद्रा की माँग की वैकल्पिक अवधारणाएँ
18.4 मुद्रा का परिमाण सिद्धांत या क्लासिकी दृष्टिकोण
18.5 मुद्रा की माँग का केन्ज़ीय सिद्धांत
  18.5.1 मुद्रा की विनिमय माँग
  18.5.2 मुद्रा की पूर्वोपायी माँग
  18.5.3 मुद्रा की सट्टा माँग
18.6 मुद्रा का परिमाण सिद्धांतः आधुनिक स्वरूप
18.7 तीनों स्वरूपों में मुद्रा की माँग की तुलना
18.8 सारांश
18.9 शब्दावली
18.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
18.11 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

18.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- मुद्रा का महत्त्व समझ सकेंगे तथा इसके कार्यों को जान सकेंगे;
- जान सकेंगे कि लोग मुद्रा या नकदी अपने पास क्यों रखना चाहते हैं;
- समझ पाएँगे कि मुद्रा की माँग के सैद्धांतिक परिणाम क्या होते हैं; तथा
- विभिन्न मुद्रा माँग सिद्धातों और उनपर आधारित नीतियों की तुलना कर सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

वस्तु विनिमय व्यवस्था में वस्तुओं का वस्तुओं या सेवाओं के बदले ही लेन-देन होता है। यदि व्यक्ति 'क' के पास जूते फालतू हों तथा 'ख' के पास चावल, तो उन दोनों में लेन-देन तभी हो पाएगा जबकि 'क' को चावल तथा 'ख' को जूतों की आवश्यकता हो, तथा वे दोनों एक-दूसरे के संपर्क में भी आ जाएँ। इसे ही वस्तु विनिमय (Barter) व्यवस्था कहते हैं। इसे बिना मुद्रा का प्रयोग किए प्रत्यक्षतः वस्तुओं/सेवाओं का आदान-प्रदान भी कहते हैं।

वस्तु विनिमय व्यवस्था की त्रुटियाँ

वस्तु विनिमय व्यवस्था में कई तरह की त्रुटियाँ या समस्याएँ पाई जाती है। उनमें से चार मुख्य इस प्रकार हैं :

i) **मूल्य के सामान्य मानदण्ड का अभाव** : इस व्यवस्था में वस्तुओं के मूल्यांकन का कोई सामान्य माध्यम नहीं होता। यह आवश्यक नहीं कि सभी वस्तुओं के मूल्य समान हों। अगर

'क' के पास चावल व 'ख' के पास गेहूँ हो तो वह कितने गेहूँ कितनी चावल की मात्रा के बदले आदान-प्रदान करेंगे? सामन्य मूल्यांकन मानदण्ड के अभाव में 'क' तथा 'ख' कि माँगों की पारस्परिक तीव्रता ही गेहूँ एवं चावल की विनिमय दर का निर्धारण कर पाएगी।

ii) **माँग के दोहरे संयोग की अनिवार्यत** : वस्तु विनिमय में यदि विनिमय कर्त्ताओं में माँग का दोहरा संयोग नहीं बने तो लेन-देन संभव नहीं होता। जब तक दोनों व्यक्ति एक-दूसरे के पास फालतू वस्तु के ही आकांक्षी नहीं हों, वे लेन-देन कर ही नहीं पाएँगे। जब तक यह दोहरा संयोग पूरी तरह से ठीक न बैठे वे व्यक्ति लेन-देन नहीं कर पाते। यदि गेहूँ बेचने वाले किसान को जूते चाहिए तो जूते बेचने वाले ऐसे व्यक्ति को ही तलाश करना होगा जिसे गेहूँ की ज़रूरत हो।

iii) **वस्तुओं की अविभाज्यता** : बहुत सी वस्तुओं को छोटी इकाइयों में बाँट पाना संभव नहीं होता। यदि 'क' के पास एक घोड़ा हो तथा 'ख' के पास एक किलोग्राम चावल हो और वे दोनों क्रमशः चावल व घोड़े के खरीददार भी हों तो भी विनिमय संभव नहीं होगा। एक किलोग्राम चावल के बदले तो कोई घोड़ा देने वाला नहीं होगा और जीवित घोड़े के छोटे टुकड़े कर पाना संभव नहीं होता। अतः यहाँ दोहरे संयोग के बाद भी लेन-देन नहीं हो पाता।

iv) **धन के संग्रह की कठिनाइयाँ** : वस्तु विनिमय व्यवस्था की एक अन्य कठिनाई भविष्य में प्रयोग के लिए धन-संग्रह से जुड़ी है। गेहूँ, चावल, घोड़ा, चमड़ा आदि सभी वस्तुएँ बहुत टिकाऊ नहीं होती। समय के साथ-साथ ये बिगड़ने लगती है। अतः इन्हें भविष्य में प्रयोग के लिए सहेज कर नहीं रखा जा सकता।

वस्तु विनिमय व्यवस्था ऐसी साधारण, अत्यंत ही अविकसित अर्धव्यवस्थाओं में ही उपयुक्त रह सकती थी जहाँ भौतिक आवश्यकताएँ बहुत सीमित थीं, तथा एक जैसी-सी चीज़ें खाने, एक-से कपड़े पहनने वाले लोग एक जैसे से ही कार्यों में संलग्न रहते थे। पर जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हुआ, मनुष्य तरह-तरह की चीज़ें प्रयोग करने लगा, हर प्रकार के कार्य में श्रम-विभाजन का प्रसार हुआ और वस्तु विनिमय की त्रुटियाँ और अधिक उजागर होती गईं। इसी से किसी ऐसे वैकल्पिक विनिमय माध्यम की आवश्यकता महसूस होने लगी जिससे वस्तु विनिमय की कठिनाइयों से उबरकर लेन-देन सहज भाव से हो सके। इसी ने मुद्रा को जन्म दिया।

मुद्रा को मानव समाज के महानतम आविष्कारों में से एक माना जा सकता है। इसकी हमें अपने आप में उस तरह से आवश्यकता नहीं होती जैसे रोटी, कपड़ा या रहने के लिए घर की जरूरत होती है। मुद्रा की जरूरत तो लेन-देन चलाने के लिए रहती है। इसकी क्रय-शक्ति ही में वस्तुओं और सेवाओं के आदान-प्रदान में सहायक होती है। इस दृष्टि से मुद्रा एक विलक्षण वस्तु बन जाती है।

18.2 अर्थव्यवस्था में मुद्रा की भूमिका : इसकी विशेषताएँ एवं कार्य

हम अपने नित्यप्रति के लेन-देन में मुद्रा के कार्य से परिचित हैं। आर्थिक लेन-देन के माध्यम के रूप में मुद्रा का यह कार्य ऐतिहासिक दृष्टि से इसका सबसे पुराना कार्य है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मुद्रा सभी को स्वीकार होती है। संक्षेप में, जो कुछ भी ऋण भुगतान सहित लेन-देन में स्वीकार हो उसे मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा की सर्वग्राह्यता के कारण संभव होता है। मुद्रा के समेत सभी विनिमयों या भुगतानों या भुगतानों में सहज भाव से 'स्वीकार्य' चीज़ हो तो कहा जाता है। यह सबसे अधिक प्रचलित विनिमय यानि क्रय-शक्ति के अंतरण का माध्यम है। इसकी सबसे बड़ी विलक्षणता इसकी सर्वमान्य स्वीकार्यता है। इसे खर्च करने या इससे ऋण चुकाने के लिए इसे किसी और चीज़ में बदलने की जरूरत नहीं होती 'अर्थव्यवस्था में सभी इसे मुद्रा के रूप में स्वीकार कर लेंगे'' यही विश्वास किसी चीज को मुद्रा का स्वरूप प्रदान करता है। किसी ने ठीक ही कहा है

मुद्रा के बस काम हैं चार

माध्यम, मान, मानक, भण्डार

मुद्रा के कार्य

मुद्रा के चार मुख्य कार्य हैं :

i) **विनिमय का माध्यम**

हम जानते ही हैं कि वस्तु विनिमय में दोहरे संयोग के बिना लेन-देन नहीं हो पाता। मुद्रा इस कठिनाई को हल कर देती है। सभी व्यक्ति, क, ख, ग अपने-अपने अथवा उत्पादन मुद्रा के बदले और लोगों को बेच सकते हैं तथा प्राप्त मुद्रा से अपनी आवश्यक चीज़ें खरीद सकते हैं। मुद्रा की यह विशेषता बड़े पैमाने पर वाणिज्य और व्यापार के विकास से जुड़ी हुई है। मुद्रा के प्रादुर्भाव ने सभी व्यापार कार्यों को किफायती और शीघ्र सम्पन्न होने वाला बना दिया है।

ii) **मूल्यांकन की इकाई**

परंपरा से ही मुद्रा को लेखे की इकाई या ऐसे मूल्यमान के रूप में प्रयोग किया जाता है जिसमें सभी वस्तुओं के मूल्य निर्धारण के लिए प्रयोग किया जा सकता है। इसी के कारण अलग-अलग इकाई में पाई जाने व सेवाओं के मूल्य व्यक्त किए जा सकते हैं। इसी के कारण अलग-अलग मात्राओं की इकाइयों में व्यक्त वस्तुओं का हिसाब-किताब लगाना सहज हो पाया है। ज़रा कल्पना कीजिए कि मुद्रा के अभाव में राष्ट्रीय आय का अनुमान, या किसी परियोजना की लागत, एक साथ कई वस्तुएँ बनाने वाली फर्म की कुल आगम- आदि के आँकड़े किस प्रकार प्रस्तुत किए जाते? मुद्रा अवधियों और क्षेत्रों के बीच में आर्थिक तुलनाएँ संभव बनाती हैं। यदि मुद्रा का साँझा मानदण्ड नहीं होता तो वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, वितरण एवं उपयोग संबंधी सामाजिक व्यवहार का अध्ययन करने वाला विज्ञान (अर्थशास्त्र) भी विकसित नहीं हो पाता।

iii) **स्थगित भुगतानों का मानक**

मुद्रा ही वह मानक या इकाई है जिसमें भविष्य के भुगतानों का निर्धारण हो पाता है। इनमें ब्याज, लाभ, भाड़ा, वेतन, पेंशन, बीमा किश्त तथा ऋण आदि सभी प्रकार के भुगतान शामिल हैं। किसी भी मौद्रिक अर्थव्यवस्था में अधिकतर भुगतान मुद्रा में ही नियत होते हैं। पर, यदि मुद्रा के मूल्य में बहुत उतार-चढ़ाव आने की स्थिति में यह मुद्रा न केवल मूल्य का अच्छा मानदण्ड सिद्ध नहीं होती बल्कि भुगतानों के मानक के रूप में तो इसकी स्वीकार्यता बहुत ही धूमिल हो जाती है।

iv) **मूल्य का भण्डार**

मुद्रा मूल्य का भण्डार भी है। लोग अपनी संपत्ति को मुद्रा के रूप में जमा कर सकते हैं। यह विशेषता मुद्रा के विनिमय के माध्यम स्वरूप से ही जुड़ी है। मुद्रा लेन-देन में प्रयोग एक वस्तु विनिमय को दो चरणों में बाँट देता है– क्रय तथा विक्रय। वस्तु विनिमय में क्रय-विक्रय साथ-साथ संपन्न होते थे। मुद्रा विनिमय में यह दोनों कार्य अलग-अलग स्थान तथा समय में भी संभव हो जाते हैं। यह तभी हो पाता है जबकि विनिमय के माध्यम को मूल्य का भण्डार भी माना जा सके। मुद्रा का सामान्य क्रय-शक्ति स्वरूप तथा इसका पूर्णतया तरल परिसम्पत्ति होना इस कार्य में बहुत सहायक होता है। यह सत्य है कि मुद्रा ही मूल्य का एकमात्र भण्डार नहीं है, हम सोना, अंशपत्र या बाण्ड आदि का भी इस रूप में प्रयोग कर सकते हैं। पर मुद्रा ही सबसे तरल है, अन्य सभी मूल्य भण्डारों को प्रयोग में लाने से पूर्व उन्हें मुद्रा में परिवर्तित करना अनिवार्य रहता है। मुद्रा को ही लोग लेन-

देन में सहज स्वीकार करते हैं। हाँ, यह बात सत्य है कि मुद्रा के मूल्य में उतार-चढ़ाव इसके मूल्य के मानदण्ड, स्थगित भुगतान के मानक तथा मूल्य भण्डार स्वरूप को प्रभावित अवश्य करते हैं।

बोध प्रश्न 1

1) एक घोड़े को विनिमय का माध्यम बनाने में किस तरह की कठिनाइयाँ आती हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2) आप जानते ही हैं कि मुद्रा को स्थायी, विभाज्य, टिकाऊ तथा लाने ले-जाने में सहज होना चाहिए। निम्न वस्तुओं को मुद्रा के रूप में प्रयोग करने के लिए वरीयता क्रम प्रदान करें और कारण भी बताएँ।

(i) चीनी; (ii) घोड़ा; (iii) नमक; (iv) खाने के लिए तैयार इडली; (v) सोना

.....

.....

.....

.....

.....

3) वस्तु विनिमय तथा मौद्रिक अर्थव्यवस्थाओं में अंतर बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

18.3 मुद्रा की माँग के वैकल्पिक सिद्धांत

समाज के मुद्रा के भण्डार में परिवर्तन के प्रभावों को ठीक से समझने के लिए मुद्रा बाज़ार के संतुलन की प्रक्रिया को समझना बहुत आवश्यक होता है। मुद्रा धारकों के लिए मुद्रा एक परिसम्पत्ति है। अतः इसकी माँग व पूर्ति और बाज़ार का होना आवश्यक है। इसकी माँग तो सामान्य जनता ही करती है। आपूर्ति सरकार तथा बैंक व्यवस्था द्वारा होती है तथा उनके लिए मुद्रा एक देयता (liability) है। मुद्रा की माँग करने वाले (जनसामान्य) तथा आपूर्ति करने वाले (सरकार, बैंक व्यवस्था) को मिलाकर मुद्रा बाज़ार का गठन होता है। इस इकाई में हम यह मानकर चलेंगे कि मुद्रा की आपूर्ति मुद्रा प्राधिकारी द्वारा स्वतंत्र रूप से निर्धारित होती है।

मुद्रा एक स्टॉक है, अर्थात् इसकी किसी भी समय बिंदु पर एक निश्चित मात्रा होती है। एक सम्पत्ति के रूप में इसकी माँग से आशय है कि जनसामान्य कितनी मुद्रा अपने पास

रखना चाहते हैं। यह माँग किसी भी उद्देश्य से हो सकती है तथा इसकी समग्र समय सीमा (अर्थात् कितने समय तक लोग मुद्रा अपने पास रखना चाहते हैं) कुछ भी हो सकती है।

खर्च आदि के लिए जेब में नकदी रखना या रुपयों को मटके में भरकर दबा देना— दोनों ही बातें उद्देश्य तथा समय अवधि की दृष्टि से भिन्न-भिन्न होते हुए भी मुद्रा की माँग तो दर्शाती ही हैं। मुद्रा की माँग के विभिन्न सिद्धांतों की व्याख्या के रूप में हम इस इकाई में आगे मुद्रा धारण के पीछे विभिन्न उद्देश्यों का अध्ययन करेंगे।

मौद्रिक विश्लेषण समग्र या समष्टिकारी विश्लेषण है। अतः हम सारे जनसामान्य की समग्र मुद्रा माँग का ही विश्लेषण यहाँ करने वाले हैं। यह समाज के सभी गृहस्थों तथा ग़ैर बैंक फर्मों की मिली-जुली मुद्रा की माँग होगी।

मुद्रा माँग सिद्धांत मुख्यतः इस माँग के निर्धारक तत्त्वों की पहचान करने तथा उनके निर्धारक होने के कारणों को समझने पर ही बल देते हैं। अतः मुख्य प्रश्न है : लोग अपने पास मुद्रा क्यों रखना चाहते हैं? इसकी कई व्याख्याएँ हुई हैं। इस इकाई में हम इन व्याख्याओं की खुलकर चर्चा करेंगे। मुद्रापूर्ति में परिवर्तन के आर्थिक प्रभाव क्या होते हैं? हर व्याख्या (सिद्धांत) इसका अपने-अपने ढंग से उत्तर देता है।

मुद्रा की माँग का क्लासिकल (नव-क्लासिकल) सिद्धांत, जो कि मुद्रा का परिमाण सिद्धांत (Quanitity Theory of Money-OTM) के नाम से लोकप्रिय है मूलतः कीमत स्तर के निर्धारण का सिद्धांत है। पर केन्ज़ के प्रभाव से मुद्रा की माँग का सिद्धांत ब्याज की दर, उत्पादन तथा रोजगार निर्धारण का सिद्धांत भी बन गया है। फ्रीडमैन ने अपने पुनःकथन (restatement) के माध्यम से परिमाण सिद्धांत को पुनः प्रतिष्ठा प्रदान करने का प्रयास किया है। इन्होंने केन्ज़ के मुद्रा धारण उद्देश्यों तथा उनसे जुड़े घटकों की पूरी तरह अनदेखी कर केवल समग्र मुद्रा माँग पर ही अपना विश्लेषण केंन्द्रित रखा। अतः घटकों पर ध्यान देने के स्थान पर फ्रीडमैन ने मुद्रा की माँग के प्रमुख निर्धारक कारकों के पहचान पर बल दिया। इनका सिद्धांत केन्ज़ीय कम और क्लासिकल अधिक प्रतीत होता है।

मुद्रा के माँग सिद्धांतों को हम तीन वर्गों में बाँट सकते हैं :

क) क्लासिकल मुद्रा माँग यानि QTM;

ख) केन्ज़ीय मुद्रा माँग सिद्धांत; तथा

ग) क्लासिकल QTM की फ्रीडमैन की व्याख्या

18.4 क्लासिकल मुद्रा का परिमाण सिद्धांत (QTM) कीमत स्तर सिद्धांत

मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के कई लोकप्रिय स्वरूप हैं। इनमें एक है फिशर का विनिमय स्वरूप। इसे फिशर के विनिमय समीकरण (Fisher equation of transactions) का नाम भी दिया जाता है।

M.V = P.T यहाँ T को आय के स्तर का पर्याय मानकर प्रयोग किया गया है।

क्लासिकल समष्टि अर्थशास्त्र मे QTM को मुद्रा की माँग का सिद्धांत माना गया है। इसका अभिप्राय है कि जन सामान्य के हाथो मे मुद्रा की मात्रा ही कीमत स्तर का निर्धारण करती है। क्लासिकल अर्थशास्त्री यही मानते थे कि अर्थव्यवस्था सदा अपनी पूर्ण क्षमता के अनुरूप (यानी पूर्णरोजगार स्तर) ही उत्पादन करती है क्लासिकी मतानुसार मुद्रा की माँग को उत्पादन के मौद्रिक मूल्य से इस प्रकार जोड़ा जा सकता है

M.v = P.y, यहाँ M = मुद्रा की माँग;

v = मुद्रा के परिचलन की दर;

P = कीमत स्तर; तथा

y = वास्तविक उत्पादन स्तर।

इसी समीकरण को v तथा y का मान अल्पकाल में स्थिर मानकर उपरोक्त समीकरण को QTM में यानि मुद्रा का परिमाण सिद्धांत में परिवर्तित किया गया है। अब जबकि v तथा y स्थिर हैं और साथ में यह पूर्वधारणा भी हो कि P में अपने आप कोई परिवर्तन संभव नहीं, तो इसका अर्थ यह है कि कीमतस्तर (P) मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन पर निर्भर है न कि मुद्रा की पूर्ति (M) कीमत स्तर में परिवर्तन पर। इससे हमें एक सीधा-सा परिणाम मिलता है। इसके अनुसार मुद्रा की आपूर्ति में कोई भी अल्पकालीन वृद्धि (या कमी) उसी अनुपात में कीमत स्तर में भी परिवर्तन लाएगी। यदि उन पूर्वधारणाओं में से कोई भी पूर्वधारणा सही न निकले तो मुद्रापूर्ति और कीमत स्तर के बीच अनुपातिक संबंधों पर प्रश्नचिह्न लगता है। इस सिद्धांत को कीमत स्तर के सिद्धांत के नाम से भी जाना जाता है।

18.5 केन्ज़ीय मुद्रा माँग सिद्धांत

इस सिद्धांत का प्रतिपादन केन्ज़ ने अपनी पुस्तक *"रोजगार, ब्याज एवं मुद्रा का सामान्य सिद्धांत"* में 1936 में किया था।

केन्ज़ के सिद्धांत को समझने के लिए दो प्रश्नों को अलग-अलग रखना आवश्यक है :

एक तो मुद्रा की माँग क्यों होती है? तथा दूसरे, इस माँग के निर्धारक तत्त्व कौन-कौन से हैं। ये दोनों ही प्रश्न एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। केन्ज़ की मुद्रा की माँग के तीन घटक हैं : विनिमय माँग, पूर्वोपायी माँग तथा सट्टा माँग।

केन्ज़ ने मुद्रा की माँग निर्धारक तत्त्व दो ही माने हैं :

(i) मौद्रिक आय यानि y; तथा (ii) ब्याज की दर यानि r

अतः एक फलन के रूप में : $M^d = M^d (y, r)$

केन्ज़ ने कैंब्रिज परंपरा के अनुसार मुद्रा की माँग का निर्धारक तत्त्व मौद्रिक आय माना है। पर उनका कहना था कि मौद्रिक आय कुल मुद्रा माँग के केवल दो घटकों— विनिमय माँग तथा पूर्वोपायी माँग की ही व्याख्या कर सकती है—मुद्रा की कुल माँग (जिसमें सट्टा माँग भी शामिल है) की नहीं। वस्तुतः सट्टा माँग की ओर सबका ध्यान आकर्षित करना ही इस संदर्भ में केन्ज़ का एक महत्त्वपूर्ण मौलिक योगदान माना जाता है। केन्ज़ के अनुसार मुद्रा की माँग का यह घटक ब्याज की दर का अनुलोम फलन (declining function) है। ब्याज की दर को उन्होंने अर्थव्यवस्था में केवल मौद्रिक कारकों से निर्धारित विशुद्ध मौद्रिक प्रभाव ही माना। मुद्रा की सट्टा माँग सट्टेबाज़ी के उद्देश्य से प्रेरित होती है। यह माँग बाज़ार में ब्याज की दरों में परिवर्तन और इससे जुड़ी अनिश्चितताओं से ही होता है।

18.5.1 मुद्रा की विनिमय माँग (M^d)

दैनिक जीवन में हर प्रकार के लेन-देन के लिए मुद्रा की आवश्यकता पड़ती है। सामान्यतः हमारी आमदनी का प्रवाह व्यय संबंधी प्रवाह से एकदम मेल नहीं खाता। व्यक्ति को महीने या सप्ताह के अंत में एक साथ आमदनी मिलती है पर वह पूरी अवधि लगभग समान रूप से खर्च करता रहता है। इसीलिए व्यक्ति को अपने रोज़मर्रा के खर्च के लिए कुछ न कुछ

राशि नकद में अपने पास रखनी पड़ती है। इसी नकदी की माँग को मुद्रा की विनिमय माँग कहते हैं। हमारी आमदनी का स्तर बाज़ार में वस्तुओं और सेवाओं पर नियंत्रण का निर्धारण करता है। सामान्य भुगतान संबंधी व्यवहार ही हमारी नकदी संबंधी जरूरतों का स्तर तय करता है। सामान्यतः अधिक आय वाले व्यक्ति नित्यप्रति कुछ ज्यादा चीज़ें खरीदते हैं तथा कम आमदनी वाले व्यक्ति अपेक्षाकृत कम वस्तुओं की ही खरीदारी की सोच पाते हैं। अतः स्वाभाविक है कि मुद्रा की विनिमय माँग आय के स्तर से जुड़ी हो। अधिक आय वाले को अधिक नकदी की आवश्यकता पड़ती है।

$$M^d = M^d(y)$$

क्लासिकल अर्थशास्त्री या मुद्रा के परिमाण सिद्धांतवादी भी मुद्रा की विनिमय संबंधी माँग के विषय में बात करते थे, विनिमय के माध्यम के रूप में मुद्रा की भूमिका पर बल देते थे। पर पूर्वोपायी तथा सट्टा माँग तो केन्ज़ की ही वैचारिक देन है। इन्हीं को उन्होंने अपना 'तरलता अधिमान' (यानि मुद्रा की माँग) का अतिरिक्त स्रोत माना।

हम यह कह सकते हैं कि मुद्रा की विनिमय माँग राष्ट्रीय आय y का एक स्थिर अनुपात k होती है। अतः $M^d = k.y = k.p.y,\ o < k < 1$

इसी समीकरण का अर्थ है कि यदि मौद्रिक आय 800 करोड़ रुपये हो तथा k=2/5 तो फिर अर्थव्यवस्था में मुद्रा की विनिमय माँग 320 करोड़ रुपये (800x2/5) होगी। इसका यह भी अर्थ है कि समाज अपने 800 करोड़ रुपये मूल्य के उत्पादन के विक्रय आदि के वित्तीयन का कार्य 320 करोड़ रुपये की नकदी से सुचारू रूप से चला सकता है। यदि राष्ट्रीय मौद्रिक आय बढ़कर 1000 करोड़ रुपये हो जाए तथा k=2/5 ही रहे तो मुद्रा की विनिमय माँग भी 400 करोड़ रुपये हो जाएगी।

हम जानते हैं कि $M^d = k.y$

$\Delta M^d_t = K\ \Delta y$

जहाँ ΔM^d_t = मुद्रा की विनिमय माँग में परिवर्तन

Δy = मौद्रिक आय के परिवर्तन

इसी प्रकार राष्ट्रीय (मौद्रिक) आय में 200 करोड़ रुपये की कमी के कारण मुद्रा की विनिमय माँग भी 80 करोड़ रुपये कम हो जाएगी।

चित्र 18.1

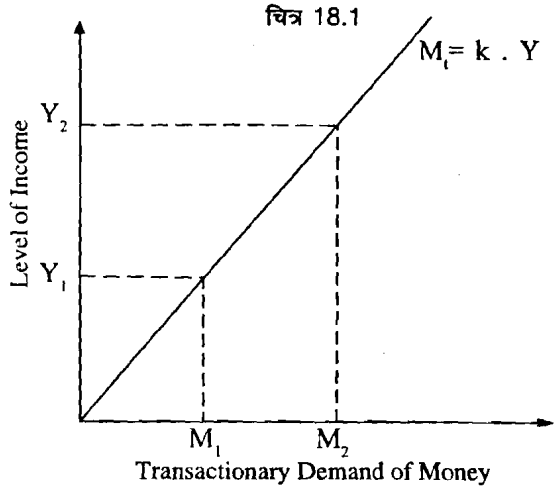

चित्र 18.1 मुद्रा की माँग को मौद्रिक आय के k अनुपात के रूप में दर्शाता है। जब आय में y_2-y_1 वृद्धि होती है तो मुद्रा की माँग M_2-M_1 बढ़ जाती है। ध्यान दें कि YM_2-M_1=k(y_2-y_1)

मुद्रा की विनिमय माँग (M^d) तथा मौद्रिक आय के संबंध को ही चित्र 18.1 में दिखाया गया है। मुद्रा की विनिमय माँग को ऊर्ध्व-अक्ष तथा मौद्रिक राष्ट्रीय आय को क्षैतिज-अक्ष पर दर्शाया गया है। जब राष्ट्रीय आय का स्तर OY_1 हो तो मुद्रा की विनिमय माँग OM_1 होगी। आय बढ़कर OY_2 हो जाने पर यह मुद्रा की माँग भी OM_2 हो जाती है। अतः राष्ट्रीय आय में OY_2-OY_1 की वृद्धि के फलस्वरूप मुद्रा की अतिरिक्त विनिमय माँग OM_2-OM_1 होगी।

अतः इस सिद्धांत के अनुसार राष्ट्रीय आय (मौद्रिक) का स्तर ही मुद्रा की विनिमय माँग का निर्धारक तत्त्व होगा। मुद्रा की विनिमय माँग पर ब्याज की दर का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। चित्र 18.2 में मौद्रिक राष्ट्रीय आय के तीन स्तर $Y_1<Y_2<Y_3$ हैं। इनसे जुड़ी मुद्रा की माँग M_1, M_2 तथा M_3 है। ऊर्ध्व-अक्ष पर ब्याज की दर तथा क्षैतिज पर मुद्रा की माँग दिखाई है। मुद्रा के इन माँग-वक्रों का ऊर्ध्व सीधी रेखाओं के रूप में दिखाया जाना इस बात का परिचायक है कि माँग पर ब्याज की दर का कोई प्रभाव नहीं है।

चित्र 18.2

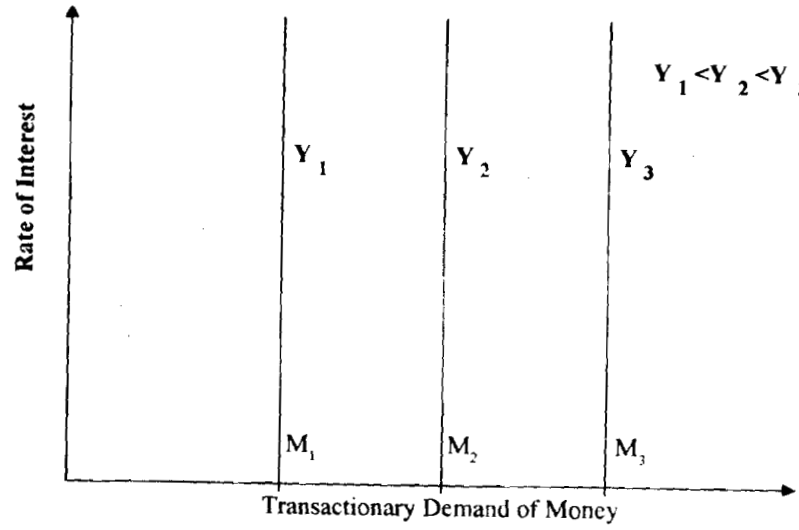

चित्र 18.2 इसी तथ्य पर बल देता है कि मुद्रा की विनिमय उद्देश्य से प्रेरित माँग पर ब्याज दर का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। Y_1, Y_2 तथा Y_3 मौद्रिक आय के तीन पृथक्-पृथक स्तर हैं तथा इन स्तरों पर लेन-देन के लिए जन-सामान्य की मुद्रा की माँग भी पृथक्-पृथक् स्तरों पर स्थिर रहती हैं। उस पर ब्याज की दर का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

18.5.2 मुद्रा की पूर्वोपायी माँग (M^d)

पूर्वोपायी माँग वस्तुतः अचानक पड़ सकने वाली आवश्यकता की पूर्ति के लिए पहले से ही कुछ प्रावधान रखने की माँग है। जहाँ व्यक्ति दुर्घटना या बीमारी जैसी दुर्संभावनाओं से निपटने के लिए कुछ नकदी संभाल कर रखते है वहीं फर्में भी प्रौद्योगिकी में अचानक परिवर्तन होने पर मशीनों आदि को बदलने के इंतजाम के लिए पहले से ही कुछ व्यवस्था करना प्रारंभ कर देती हैं। इन्हीं से मुद्रा की पूर्वोपायी माँग का सृजन होता है। व्यक्ति या फर्म का पूर्वोपाय संबंधी पूर्वानुमान उनकी वर्तमान आय के स्तर पर ही निर्भर करता है। अतः हम पूर्वोपायी माँग को भी मौद्रिक राष्ट्रीय आय पर आश्रित मानते हैं। उच्च आय स्तर पर इन आकस्मिकताओं के लिए जन-सामान्य एवं फर्म आदि ज़्यादा राशि अपने पास रखना चाहेंगे। अतः मुद्रा की पूर्वोपायी माँग M^d_p राष्ट्रीय आय के स्तर Y पर निर्भर है।

$$M^d = g(y)$$

केन्ज ने मुद्रा की विनिमय तथा पूर्वोपायी माँगों को मौद्रिक राष्ट्रीय आय का एक अलग फलन मानकर उन्हें एक साथ ही रखना उचित समझा। मुद्रा की माँग के एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक के रूप में ब्याज की दर तो केवल तीसरे उद्देश्य अर्थात् सट्टेबाज़ी के मकसद से ही प्रवेश पाती है।

बोध प्रश्न 2

1) क्लासिकल मुद्रा के परिमाण सिद्धांत की मुख्य मान्यताएँ क्या हैं?

....

....

....

....

....

18.5.3 मुद्रा की सट्टा माँग (M^d_p)

विनिमय के माध्यम के साथ-साथ मुद्रा मूल्य के भण्डार का भी कार्य करती है। मुद्रा की सट्टा माँग मुद्रा की एक परिसम्पत्ति के रूप में यानि मूल्य के भण्डार के रूप में माँग हैं। केन्ज़ ने इसे ही तरलता अधिमान का नाम दिया है। यही केन्ज के मुद्रा माँग सिद्धांत का नवीन व क्रांतिकारी तत्त्व है। इसके माध्यम से ही केन्ज ब्याज की दर तथा मुद्रा की माँग (आंशिक रूप से) के बीच विपरीत संबध स्थापित कर पाया। मुद्रा की सही माँग मौद्रिक सिद्धांत मे केन्ज का मुख्य स्तंभ है और इसी से उन्होंने मुद्रा के परिमाण सिद्धांत पर प्रहार किया।

मुद्रा की सट्टा माँग सट्टे के उद्देश्य से प्रेरित होती है। यह माँग ब्याज दरों में उतार-चढ़ाव और उनसे जुड़ी अनिश्चितताओं के कारण होती है। विश्लेषण सरल रखने के लिए केन्ज़ ने सभी प्रतिभूतियों (शेयर, बाण्ड आदि) को बेमियादी बाण्ड मान लिया। अतः ये बाण्ड [illegible] और मुद्रा वित्तीय परिसम्पत्ति होंगे जिनकी मुद्रा से प्रतिस्पर्धा है। मुद्रा अपने पास रखने पर हमें कोई ब्याज नहीं मिलता पर बाण्ड से ब्याज की आमदनी होती है। हाँ मुद्रा का मौद्रिक रूप में पूँजी मूल्य स्थिर रहता है, पर बाण्ड के पूँजी मूल्य में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। यह भी संभव है कि भविष्य में बाण्ड का मूल्य इतना कम हो जाए कि उससे प्राप्त हुई ब्याज आय के बाद भी घाटा ही रहे। बाण्ड का मूल्य वास्तव में उसकी कूपन दर तथा बाजार में ब्याज दर के अनुलोम का गुणनफल ही होता है। यदि किसी बाण्ड पर 10 रुपये प्रतिवर्ष का कूपन हो तथा बाज़ार मे ब्याज की दर 4% प्रतिवर्ष हो तो बाण्ड का बाजार मूल्य होगा 10-0.04=250 रुपया। बाजार में ब्याज दर बढकर 5% हो जाने पर बाण्ड का मूल्य भी घटकर 200 रुपये ही रह जाएगा (10-0.05=200)। अतः बाण्ड का मूल्य ब्याज की दर का अनुलोम फलन है।

आर्थिक इकाइयाँ अपनी सम्पत्ति का एक भाग वित्तीय परिसम्पत्तियों के रूप में रखते हैं। मुद्रा और बाण्ड (बेमियादी) के हमारे दो परिसम्पत्ति मॉडल में बाण्डों का मूल्य ब्याज दर के साथ-साथ घटता-बढ़ता रहता है। अतः उनसे पूँजीगत लाभ या हानि की संभावना होती है। इसीलिए बाण्ड धारक की (बाण्ड से) प्रतिवर्ष होने वाली आय ब्याज की दर+पूँजीगत लाभ या हानि के समान होगी। बाण्ड में निवेश करते समय हमारी आर्थिक इकाई ब्याज की वर्तमान दर को तो ध्यान में रखेगी ही, वह भविष्य में ब्याज दर के उतार-चढाव का भी पूर्वानुमान लगाने की भी चेष्टा करेगी। अतः बाण्ड तथा मुद्रा बाज़ार में सट्टे का प्रवेश सहज भाव हो ही जाता है।

केन्ज़ के सिद्धांत में कोई आर्थिक इकाई किसी भी ब्याज की दर पर मुद्रा या बाण्ड में से एक ही अपने पास रखेगी। सटोरियों को दो वर्गों में बाँटा जाता है : तेजड़िये तथा मंदड़िये।

तेजडिये वे होते हैं जो भविष्य में बाण्ड मूल्यों के बढने की आशा में रहते हैं तथा मन्दड़िये हमेशा ही बाण्ड मूल्य गिरने की उम्मीद में होते हैं। अतः तेजड़िये अपनी सारी नकदी को

बाण्ड खरीदने में लगा देते हैं पर मन्दड़ियों को अगर लगता है कि बाण्ड मूल्य गिरने से पूँजी हानि ब्याज की आय से ज़्यादा होगी तो वे सारे बाण्ड बेच डालते हैं इस तरह से वे अपनी हानि कम से कम करने का प्रयास करते हैं। अतः मुद्रा की सट्टा माँग का स्रोत केवल मन्दड़िये ही होते हैं। ये व्यक्ति बस अवसर की तलाश में नकदी जमा करके रखते हैं जब उन्हें बाण्ड मूल्य दुबारा बढ़ने के आसार दिखाई पड़ने लगेंगे। अतः जब बाण्ड मूल्य बहुत कम होते हैं, तो सभी तेजड़िये बन जाते हैं। इस बिन्दु पर (r^*) मुद्रा की सट्टा माँग शून्य होगी। पर ब्याज दर कम होने पर (r_1) बाण्ड मूल्य बढ़ जाते हैं तथा कुछ तेजड़िये बन जाते हैं। अतः M_1 मात्रा में मुद्रा की सट्टा माँग पैदा हो जाती है। और कम ब्याज की दर (r_2) पर तो और मंदड़ियों की संख्या और बढ़ जाती है तथा मुद्रा की सट्टा माँग M^2 तक पहुँच जाती है। केन्ज़ की यह ब्याज की दर से विपरीत संबंध वाली मुद्रा की सट्टा माँग-वक्र ही चित्र 18.3 में दिखाई गई है।

चित्र 18.3

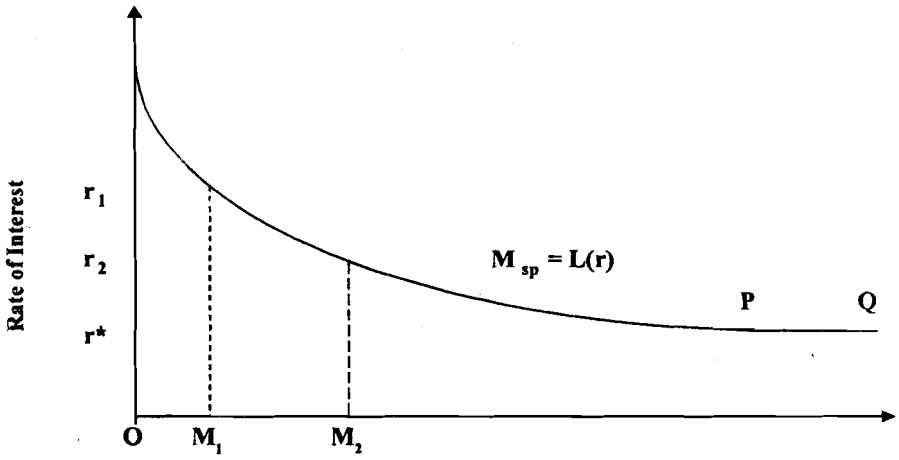

Speculative Demand for Money

चित्र 18.3 में हमने दिखाया कि मुद्रा की सट्टा माँग ब्याज की दर से अनुलोम रूप से संबंधित है। अतिन्यून ब्याज दर, r पर तो यह मुद्रा माँग-वक्र क्षैतिज-अक्ष के स्थानान्तर हो जाती है : देखिए बिन्दु P तथा Q। इसी को केन्ज़ ने नकदी जाल (ligquidity trap) का नाम दिया था।

केन्ज़ का कहना था कि बहुत कम ब्याज दर r पर यह सट्टा माँग पूर्णतः लोचशील हो जाती है। इसी से एक नकदी जाल की स्थिति पैदा होता है। चित्र 18.3 में यह माँग-वक्र का हिस्सा PQ है। यह स्थिति तब आती है जबकि अतिन्यून ब्याज दर पर सभी मंद गति हो जाते हैं। अतः सभी उन्हें बेचकर नकदी प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। बैंक व्यवस्था तथा वित्तीय संस्थाएँ ब्याज से होने वाली आय पर ही निर्भर रहती है। अतः यह दर r, ऐसी न्यूनतम दर होगी जिससे और नीचे जाना संभव नहीं होता।

एक फलन के रूप में हम कह सकते हैं : $M^d_p = L(r)$

हम यह पहले देख चुके हैं कि मुद्रा की विनिमय तथा पूर्वोपाय माँग आय के स्तर पर निर्भर होती हैं। यह संबंध अनुपातिक होता है तथा अनुपात है k अतः मुद्रा की समग्र माँग होगी :

$$M^d = k.(P.y) + L(r)$$

अर्थात् मुद्रा की माँग के दो घटक हैं, एक आय के मौद्रिक स्तर पर तथा दूसरा ब्याज की दर पर निर्भर करता है। यही मुद्रा का माँग-वक्र चित्र 18.4 में दिखाया गया है।

चित्र 18.4

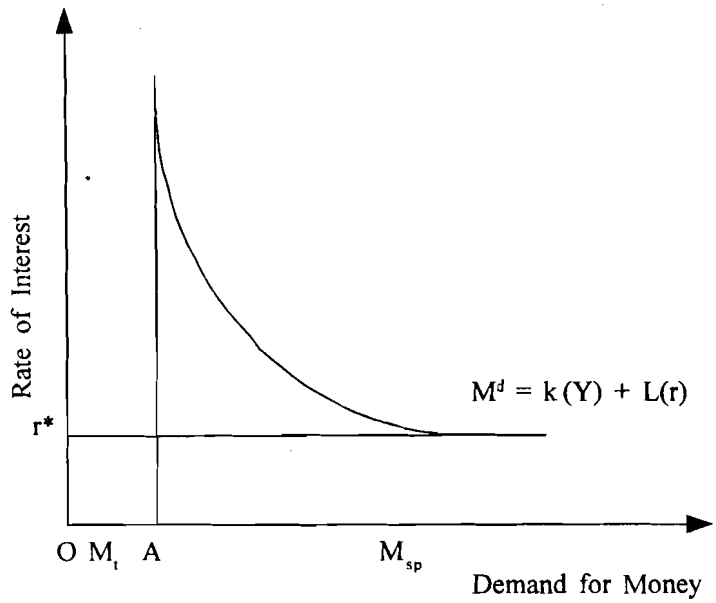

चित्र 18.4 बताता है कि मुद्रा की समग्र माँग आय तथा ब्याज की दर दोनों पर निर्भर होती है। इसे ब्याज तथा मुद्रा अक्षों पर दर्शाया गया है। मौद्रिक आय के प्रत्येक स्तर पर हमें ऐसी ही एक मुद्रा माँग-वक्र प्राप्त होगी। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस प्रकार के चित्र में OA ही मुद्रा की विनिमय माँग होगी। इससे आगे का वक्र सट्टा माँग दर्शाता है।

इस इकाई में मुद्रा की पूर्ति को हमने बाह्य रूप से निर्धारित माना है। दूसरे शब्दों में, देश के मुद्रा प्रधिकारी (जैसे भारत सरकार तथा भारतीय रिज़र्व बैंक) मुद्रा की पूर्ति का निर्धारण करते हैं तथा इस मामले में फर्मों और परिवारों का कोई योगदान नहीं रहता।

अतः $M^s = M$ (स्थिर स्तर), जहाँ M^s मुद्रा की आपूर्ति।

मुद्रा बाज़ार में संतुलन तभी होगा जब मुद्रा की माँग उसकी पूर्ति के समान हो अर्थात् बाज़ार में उपलब्ध मुद्रा भण्डार उतना ही हो जितनी जनसामान्य को आवश्यकता है। यथा

$$M^d = k.p.y+L(r) = M = M^s$$

इस समीकरण का अभिप्राय है कि y तथा r के स्तर ऐसे होने चाहिए कि जनसामान्य उतनी ही मुद्रा अपने पास रखने को उत्सुक हो जाएँ जितनी कि मुद्रा प्राधिकारी उपलब्ध कराना चाहते हैं। देखिए चित्र 18.5

चित्र 18.5 में M^d = OA तथा M^s = OB मुद्रा की माँग तथा पूर्ति समान होने का अर्थ है कि जनसामान्य OB मात्रा में मुद्रा अपने पास रखें। ताकि $M^d_p = L(r)$ का स्तर OB-OA अर्थात् AB के समान होना चाहिए। अतः मुद्रा बाज़ार का संतुलन तभी होता है जब ब्याज की दर अपने संतुलन स्तर re पर पहुँच जाए। तभी M^d_p का स्तर AB के समान होगा। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि मुद्रा बाज़ार में ब्याज की दर के माध्यम से ही संतुलन स्थापित होता है। यहाँ p, k, y तथा M^s सभी बाह्य रूप से निर्धारित होते हैं।

इसीलिए केन्ज़ का मानना था कि ब्याज की दर एक पूर्णतः मौद्रिक तत्त्व ही है। इसका निर्धारण मुद्रा की माँग तथा पूर्ती ही करते हैं। यह क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के एकदम विपरीत हैं। उनके विचार में तो ब्याज की दर भी एक वास्तविक तत्त्व था जिसका निर्धारण वस्तु बाज़ार में वास्तविक बचत तथा निवेश की माँग द्वारा होता था।

मुद्रा की आपूर्ति में परिवर्तन के प्रभाव

मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन का अर्थ होगा चित्र 18.5 में M^s वक्र खिसककर M^s_1 बन जाए। इसके क्या परिणाम होंगे? इस आपूर्ति वृद्धि से ब्याज की दर कम होगी बाण्डों के मूल्य बढ़ेंगे तथा तेजड़ियों की बिरादरी पहले की अपेक्षा ज़्यादा सक्रिय हो जाएगी। अत मुद्रा की सट्टा माँग बढ़ने लगेगी। यह बढ़ोतरी तब तक ज़ारी रहेगी जब तक कि मुद्रा की अतिरिक्त राशि निपट न जाए। मुद्रा बाज़ार में नया संतुलन r_1 ब्याज की दर स्थापित हो पाएगा।

चित्र 18 5

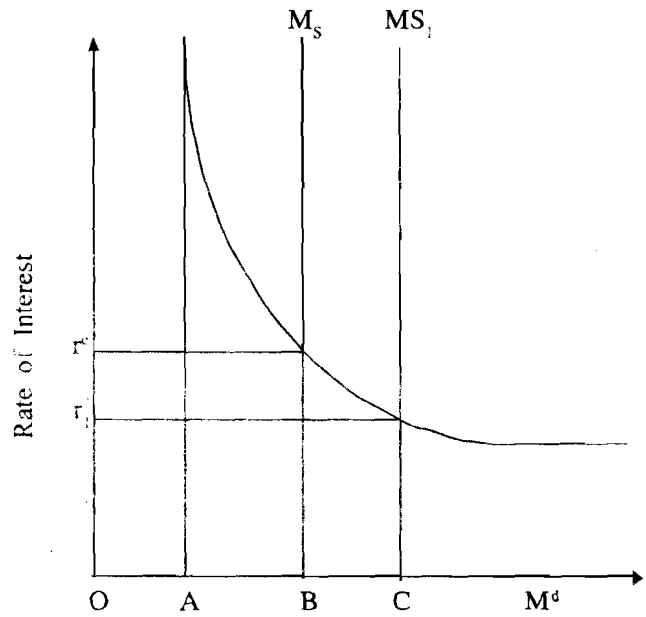

चित्र 18 5 : यहाँ M^d मुद्रा की समग्र माँग है तथा M^s आपूर्ति। यह आपूर्ति किसी भी मौद्रिक आय स्तर पर नीति निर्धारित आपूर्ति होती है। जहाँ भी $M^d = M^s$ वहीं पर संतुलन तथा ब्याज की दर re निर्धारित होगी। ध्यान दें कि मुद्रा की कुल माँग OB में से OA तो विनिमय माँग है तथा AB सट्टा माँग है। यदि M^s को बढ़ाकर M^s_1 कर दिया जाए तो ब्याज की नई दर भी r_1 हो जाएगी। अब सट्टा माँग भी बढ़कर AC हो जाती है।

मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन के विस्तृत विवरण के लिए इकाई 16 को एक बार फिर से दोहरा लें।

बोध प्रश्न 3

1) मुद्रा की माँग की क्लासिकल एवं केन्ज़ीय अवधारणाओं में कुछ मुख्य अन्तर क्या थे?

.....

.....

.....

.....

.....

2) चित्रों की सहायता से यह समझाइए कि मुद्रा की सट्टा तथा विनिमय माँगों में क्या अन्तर है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) मुद्रा तथा बाण्डों में तीन अन्तर बताइए

.....

.....

.....

.....

.....

4) छह से आठ पंक्तियों में (एक चित्र बनाते हुए) तरलता अधिमान की अवधारणा समझाइए।

.....

.....

.....

.....

.....

5) मुद्रा की पूर्ति बढ़ने का (मुद्रा बाज़ार में) क्या प्रभाव होता है?

.....

.....

.....

.....

.....

18.6 मुद्रा का परिमाण सिद्धांत : आधुनिक स्वरूप

शिकागो विश्वविद्यालय के प्रख्यात अर्थशास्त्री मिल्टन फ्रीडमैन ने मुद्रा के परिमाण सिद्धांत को एक नए स्वरूप में प्रस्तुत किया है। उनकी इस प्रस्तुति को ही आज हम मुद्रावाद या नवपरिमाण सिद्धांत कहते हैं। यह क्लासिकल परिमाण सिद्धांत का ही आधुनिक संस्करण है। क्लासिकल QTM मूलतः एक कीमत (स्तर) सिद्धांत ही है। इसे मौद्रिक आय के निर्धारण का सिद्धांत भी मान लियां जाता है। पर फ्रीडमैन ने इसे मूलतः मुद्रा की माँग के सिद्धांत की तरह रचा है। यह केन्ज़ीय धारा से इस दृष्टि से बाहर है कि इसमें मुद्रा धारण के उद्देश्य में कोई भेद करना आवश्यक नहीं समझा गया।

क्लासिकल समष्टि आर्थिक विश्लेषण में मुद्रा के विनिमय का माध्यम होने को ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया था। पर फ्रीडमैन ने केन्ज़ की ही भाँति मुद्रा को एक परिसम्पत्ति के रूप में ही अपने सिद्धांत में स्थान दिया है। एक दृष्टि से वह केन्ज़ से आगे निकल गए हैं : उन्होंने कहा है कि व्यक्ति अपनी सम्पत्ति को न केवल (i) मुद्रा; (ii) बाण्ड के रूप में ही रख सकते हैं बल्कि वे चाहें तो (iii) अंश पत्र; (iv) भौतिक पदार्थों— (यथा वस्तुओं, दीर्घकालिक प्रयोग की वस्तुओं, भवनों, तथा (v) मानवीय पूँजी के रूप में भी धारण कर सकते हैं। मानवीय पूँजी मनुष्य की उपार्जन क्षमता के रूप में निहित मानी गई है।

फ्रीडमैन उपर्युक्त प्रकार से बनी सकल सम्पत्ति को मौद्रिक माँग का निर्धारक मानते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से सकल सम्पत्ति, विशेषकर मानवीय सम्पत्ति का आकलन करना काफी कठिन हो जाता है। इन्हीं कठिनाइयों को ध्यान में रखकर उन्होंने व्यक्ति की स्थायी आय को ही उसकी सम्पत्ति के सूचक के रूप में प्रयुक्त किया है।

आइए अब हम विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों 'w' पर अपेक्षित प्रतिफल दर (Expected rate of return) के बारे में भी चर्चा करें। यह मुद्रा की माँग का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्त्व है।

i) **मुद्रा** : फ्रीडमैन ने मुद्रा के व्यापक स्वरूप, जिसमें नकदी, तथा बैंकों के पास माँग व सावधि जमाएँ भी शामिल हैं, का प्रयोग किया है। मुद्रा से व्यक्ति आश्वस्त रहता है तथा उसका लेन-देन सुगमता से चलता है। पर नकदी से उसे कोई आमदनी नहीं मिलती। बैंक में जमाओं पर अवश्य कुछ थोड़ी बहुत प्राप्ति होती है। कीमत स्तर में उतार-चढ़ाव का भी मुद्रा के मूल्य पर प्रभाव पड़ता है। कीमत वृद्धि से मुद्रा का मूल्य गिर जाता है तो कीमतों का स्तर गिरने से मुद्रा का मूल्य बढ़ जाता है।

ii) **बाण्ड** : यह ऋण-पत्र या सरकारी प्रतिभूतियाँ हैं। इन पर धारक को ब्याज मिलता है।

iii) **अंश-पत्र** : यह निगमित कंपनियों के हिस्से या शेयर हैं। इनके धारक कंपनी के अंशधारी कहलाते हैं। इन पर लाभांश की प्राप्ति होती है।

iv) **भौतिक पदार्थ** : यदि इन चीज़ों के दाम बढ़ जाएँ तो पूँजीगत लाभ होता है। भारत जैसे देश में सोना, भूमि तथा गृह-सम्पत्ति बहुत ही अच्छी सम्पत्तियाँ मानी जाती हैं क्योंकि इनकी कीमतें बड़ी जल्दी ही बढ़ जाती हैं।

v) **मानवीय पूँजी** : यह मनुष्य की कमाने की क्षमता ही है। इसका निर्धारण व्यक्ति की स्थास्थ्य, शिक्षा, प्रशिक्षण तथा कार्य करने की अवस्था आदि योग्यताओं से होता है।

vi) **ब्याज की दर में परिवर्तन [r-(1/r).d_1/d_1]** : अर्थव्यवस्था में उत्पादन एवं माँग की दशाओं के अनुरूप ही ब्याज की दर में परिवर्तन होते हैं।

(vi) **अपेक्षित स्फीति [(1/p).dp/dt]** : अपेक्षित स्फीति दर उत्पादन वृद्धि संबंधी अपेक्षाओं तथा पिछले समय में रही मुद्रा स्फीति दर पर निर्भर है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि :

$$Md=f [p, w, r-(1/r) (dr/dt), 1/p(dp/dt), 1]$$

18.7 मुद्रा की माँग संबंधित तीनों सिद्धांतों की तुलना

अब हम एक ऐसे मुद्दे पर आते हैं जिसके आधार पर केन्ज़ तथा फ्रीडमैन की अवधारणाओं में मुख्यतः भेद किया जाता है। यह मुद्दा मुद्रा की माँग फलन के स्थायित्व का मुद्दा है। स्थायित्व से हमारा अभिप्राय है कि मुद्रा की माँग का अपने निर्धारक तत्त्वों के साथ संबंध बार-बार बदलता न रहे। इसकी दिशा व स्वरूप यथा संभव स्थिर रहने चाहिए।

फ्रीडमैन के मुद्रावादी दृष्टिकोण के अनुसार क्लासिकल मुद्रा माँग फलन M.v = Py काफी स्थिर हैं। दूसरे शब्दों में, मुद्रा के परिचलन का वेग v अपेक्षाकृत स्थिर रहता है। अतः अल्पकाल में मुद्रा की आपूर्ति ही मौद्रिक आय y का निर्धारण कर देती है। वस्तुतः मुद्रावाद का सार यंही है कि मुद्रा की आपूर्ति ही मौद्रिक आय की निर्धारक है। आपने खंड 7 में जिस प्रकार से केन्ज़ीय गुणक के आधार पर समग्र माँग का निर्धारण किया था उसी प्रकार

मुद्रावादी दृष्टिकोण भी समग्र माँग का निर्धारण करते हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि मुद्रावादियों की दृष्टि में सकल माँग के निर्धारण में रोजकोषीय नीति नहीं बल्कि 'केवल मुद्रा का ही महत्त्व है'। यदि v का स्तर तय है तो बस m ही मौद्रिक आय के स्तर का निर्धारण करने के लिए पर्याप्त रहेगा। पर कल्पना कीजिए कि v स्थिर नहीं रहती, बल्कि जैसे-जैसे मुद्रा धारण की लागत बढ़ती है, इसका आकार भी बढ़ जाता है। अब तो लोग अपने पास नकदी कम से कम रखना चाहेंगे। दूसरे शब्दों में, मुद्रा परिचलन का वेग v समय के साथ-साथ बढ़ता है। इसी समय यदि राजकोषीय नीति सार्वजनिक व्यय को बढ़ाकर ब्याज की दर की वृद्धि के माध्यम से निजी निवेश को भी कम करने का प्रयास करे तो भी v में वृद्धि होगी तथा मौद्रिक आय उसके परिणाम स्वरूप बढ़ जाएगी। अतः m में वृद्धि के बिना भी राजकोषीय नीति मौद्रिक आय बढ़ा सकती है, यदि ब्याज की दर के साथ-साथ u भी बढ़े। पर v को स्थायी मानकर मुद्रावादी राजकोषीय नीति के महत्त्व को पूरी तरह से नकार देते हैं।

पर केन्ज़ तथा उसके अनुयायियों ने v की अस्थिरता तथा नकदी नाल का सहारा लेकर ही मौद्रिक नीति का प्रभावहीन 'सिद्ध' किया था। जैसे हमने खंड 7 में देखा था कि सामान्य केन्ज़ीय मॉडल में तो मुद्रा को पूरी तरह गौण मानकर अर्थव्यवस्था में समग्र माँग के स्तर के निर्धारण का सारा भार राजकोषीय नीतियों पर डाल दिया गया था।

इसी शताब्दी के छठे व सातवें दशकों को केन्ज़ीय नीति निर्धारकों का चर्मोत्कर्ष काल कहा जा सकता है। पर आठवें दशक से मुद्रा स्फीति में वृद्धि ने एक बार पुनः मुद्रावाद को कुछ प्रतिष्ठा प्रदान की है। यद्यपि केन्ज़ीय एवं मुद्रावादी नीतियों व सिद्धांतों में टकराव अभी ज़ारी है, पर सैम्युलसन तथा नॉरधौस के शब्दों में, "अब आधुनिक समष्टि अर्थशास्त्र की मुख्यधारा में (इन अध्ययनाओं में) पूर्ण असहमति का स्थान किसी सीमा तक इनका अभिसरण ले रहा है।"

बोध प्रश्न 4

1) केन्ज़ीय तथा फ्रीडमैन की मुद्रा की माँग संबंधी अवधारणाओं का भेद संक्षेप में बताएँ।

.....

.....

.....

.....

.....

18.8 सारांश

इस इकाई का आरंभ हमारे वस्तु विनिमय व्यवस्था से किया था? जिसकी समस्याओं ने ही अंततः मुद्रा को जन्म दिया। लेखे की इकाई, विनिमय के माध्यम तथा मूल्य के भण्डार के रूप में मुद्रा अर्थव्यवस्था में बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करती है। QTM के पक्षधर अर्थशास्त्री मानते थे कि मुद्रा के आवरण की आड़ में अर्थव्यवस्था के सभी वास्तविक लेन-देन होते हैं। उनका यह भी मानना था कि मुद्रा अपने आप में निष्पक्ष 'है' तथा वास्तविक चरों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह तो आर्थिक तन्त्र में चिकनाई का कार्य करती है, जिससे आर्थिक लेन-देन शीघ्रता से तथा कम से कम लागत पर सम्पन्न होते हैं। वस्तु विनिमय में दोहरे संयोग की अनिवार्यता इस लागत को बहुत बढ़ा देती थी। केन्ज़ ने QTM द्वारा व्यक्त मुद्रा की विनिमय माँग के साथ-साथ दो और मुद्रा धारण के उद्देश्यों की चर्चा की है। ये हैं पूर्वोपाय तथा सट्टा। इनके विश्लेषण एवं मौद्रिक क्षेत्रक परस्पर अलग न रहकर एक-दूसरे से प्रभावित होकर व्यवहार करने लगते हैं। फ्रीडमैन ने मौद्रिक आय के निर्धारण

में मुद्रा को ही केन्द्र बिन्दु माना, पर केन्ज़ को, विशेषकर व्यापक मदी के जिस संदर्भ मे उन्होंने अपने "सामान्य सिद्धांत" की रचना की थी, समग्र उत्पादन के स्तर के निर्धारण में मौद्रिक नीति के प्रभावी होने पर काफी संदेह था। उन्होंने मंदी से बाहर निकलने में रोजकोषीय नीति का स्थान ही सर्वोपरि रखा। पर दूसरी ओर इस बात से संतुष्ट होकर कि मुद्रा का परिचलन वेग स्थिर रहता है। फ्रीडमैन तो यही मानते हैं कि राजकोषीय या मौद्रिक नीतियों का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। अतः मुद्रावाद भी इसी बात पर आकर जम जाता है कि वास्तविक चरों के स्तर के निर्धारण में "मुद्रा का कोई महत्त्व नहीं हैं।" A दूसरे शब्दों में क्लासिकल QTM ही सही थी।

18.9 शब्दावली

वस्तु विनिमय अर्थव्यवस्था : वस्तुओं के बदले वस्तुओं के लेन-देन पर आधारित अर्थव्यवस्था।

पूँजीगत लाभ/हानि : एक परिसम्पत्ति की विक्रय कीमत और उसकी लागत का अंतर। यदि किसी परिसम्पत्ति का विक्रय मूल्य खरीद मूल्य से अधिक हो तो पूँजी लाभ और यदि कम हो तो पूँजी हानि होती है।

क्लासिकल QTM : मुद्रा एक ऐसा आवरण है जिसके पीछे ही सभी आर्थिक गतिविधियों होती हैं। मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन केवल मौद्रिक चरों को प्रभावित करती है, वास्तविक चर इससे अप्रभावित रहते हैं। इस सिद्धांत का सत्व यही है कि मुद्रा की पूर्ति कीमत स्तर का निर्धारण करती है।

क्लासिकल द्वैध : इसका अर्थ यही है कि वास्तविक तथा मौद्रिक अर्थव्यवस्था एक-दूसरे से स्वतंत्र होकर कार्य करती है।

मुद्रा की आय परिचालक दर: अंतिम वस्तुओं/सेवाओं के विनिमय में एक वर्ष में जितनी बार एक मुद्रा इकाई के एक साथ में जाए वहीं परिचलन दर है।

तरलता अधिमान : अन्य परिसम्पत्तियों की अपेक्षा नकदी को प्राथमिकता देना।

नकदी जाल : ब्याज की वह अतिन्यून दर जिसपर मुद्रा माँग-वक्र क्षैतिज-अक्ष के समानांतर हो जाता है। यहाँ मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि से ब्याज की दर कम नहीं हो पाती।

मुद्रा की पूर्वोपाय माँग : अचानक पड़ जाने वाली आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी व्यक्ति अपनी आय का कुछ भाग नकद रख छोड़ते हैं। यह उद्देश्य सभी प्रकार की अनिश्चितताओं से प्रभावित होता है।

मुद्रा की सट्टा माँग : बाण्ड या शेयर बाज़ार में दाम गिरने पर खरीदारी करके पूँजीगत लाभ कमाने की आशा में नकदी का संग्रह। इन सटोरियों को आशा होती है कि इस तरह से खोए गए ब्याज की भरपाई पूँजीगत लाभ से हो जाएगी।

मुद्रा की विनिमय माँग : रोज़-रोज़ चीज़ों की खरीदारी के लिए नकदी की

ज़रूरत होती ही है। यह माँग मुद्रा के विनिमय माध्यम स्वरूप पर बल देती है।

मौद्रिक आय : चालू कीमतों पर आय का मूल्य।

स्थायी आय : वर्तमान तथा पूर्व कालिक आयों का एक भारित योग।

'से' का नियम : 'पूर्ति अपनी माँग का स्वयं सृजन कर लेती है।' दूसरे शब्दों में किसी भी अर्थव्यवस्था में उत्पादन का स्तर माँग पर नहीं बल्कि पूर्ति पर आश्रित है।

18.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Ackley, Gardner (1977), "*Macro Economics : Theory and Policy*", Macmillan, New York.

Bhaduris Amit (1986), "*Macro Economics, The Dynamics of Commodity Production*", Macmillan, London.

Gupta, Suraj B. (1982), "*Monetary Economics*", S.Chand & Company, New Delhi.

Shapiro, Edward (1985), "*Macro Economics Ayalisis*", Edward Brace Juanovich, New York.

18.11 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) घोड़े का विनिमय का माध्यम बनाने में समस्या तब पैदा होगी जब आप एक किलो चावल खरीदना चाहेंगे। आप ऐसा नहीं कर पाएँगे क्योंकि जीवित घोड़े के छोटे-छोटे टुकड़े नहीं हो सकते।

2) i) चीनी का मूल्य मौसम के हिसाब से बदल सकता है। यह विभाज्य है पर इसे लाना ले जाना सहज नहीं।

ii) घोड़े बूढ़े होने पर इसका मूल्य कम हो जाएगा। यह विभाज्य भी नहीं है। इसमें टिकाऊपन का भी अभाव है, जीवित जन्तु होने के कारण इसके स्वास्थ्य आदि का भी प्रभाव इसके मूल्य पर पड़ेगा। इसे हर जगह ले जाना भी इतना सरल नहीं है। यह मुद्रा का बहुत ही विचित्र स्वरूप होगा।

iii) नमक मुद्रा का कुछ बेहतर कार्य कर सकता है क्योंकि इसका अपना मूल्य प्रायः स्थिर रहता है; यह विभाज्य भी है और टिकाऊ भी; पर उच्च मूल्य की वस्तुओं के लिए इसकी बहुत भारी मात्रा को लाना ले-जाना आसान नहीं होता।

iv) इडली तो हर तरह से ही मुद्रा का बहुत ही घटिया स्वरूप होगा। यह कुछ घंटों तक की टिकाऊ रह सकती है, इसका मूल्य भी स्थिर नहीं रहता, यह केवल विभाज्य है।

v) सोना मुद्रा के सभी आवश्यक गुणों से सम्पन्न है। अतः दी हुई वस्तुओं में यही सबसे उपयुक्त रहेगा।

स्थायी विभाज्य टिकाऊ आसानी से लाई-ले जाने योग्य :

चीनी

घोड़ा

नमक

इडली

सोना

3) वस्तु विनिमय तथा मौलिक अर्थव्यवस्था के अंतरों का वर्णन भाग 18.1 में है।

बोध प्रश्न 2

1) क्लासिकल QTM की प्रमुख मान्यताएँ ये हैं :

   i) मुद्रा के परिचलन वेग v की स्थिरता; तथा

   ii) वास्तविक आय y की स्थिरता।

बोध प्रश्न 3

1) इस प्रश्न के उत्तर के लिए भाग 18.4 तथा 18.5 देखें। भेद का मुख्य आधार मुद्रा धारण के उद्देश्य ही हैं। क्लासिकल सिद्धांत केवल एक उद्देश्य बताता है जबकि केन्ज़ के सिद्धांत में तीन उद्देश्य बताए गए हैं।

2) मुद्रा की विनिमय माँग केवल मौद्रिक आय तथा सट्टा माँग केवल ब्याज की दर पर आधारित है। दोनों ही समग्र मुद्रा माँग की घटक हैं। देखिए भाग 18.5

3)

मुद्रा	बाण्ड
क) मुद्रा पर कोई ब्याज नहीं मिलता	क) ब्याज मिलता है।
ख) यह सभी को स्वीकार्य होती है।	ख) हर कोई इन्हें स्वीकार नहीं करता।
ग) यह अच्छी तरह विभाज्य है।	ग) इसकी विभाज्यता इतनी अच्छी नहीं होती।
घ) इसका मूल्य स्फीति के अनुसार बदलता है।	घ) इनका मूल्य ब्याज की दर के साथ बदलता है।

4) तरलता अधिमान की व्याख्या में 18.5 केन्ज़ीय मुद्रा की माँग के अंतर्गत देखिए।

5) मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि से ब्याज की दर कम होती है। इसके कारण मुद्रा की माँग बढ़ती है। यह क्रम चलता रहता है और अन्ततः एक कम ब्याज स्तर तथा अधिक मुद्रा माँग पर संतुलन हो जाता है जो कि मुद्रा की आपूर्ति के समान होती है।

बोध प्रश्न 4

1) इस प्रश्न का सही उत्तर देने के लिए इकाई के अंतिम तीनों भागों का अध्ययन आवश्यक है। अंतिम भाग तो केवल इनकी तुलना ही करता है।